Indian J. Soc.& Pol. 04(02):2017:127-132 **ISSN 2348-0084(P)**
ISSN 2455-2127(O)

श्रेष्ठ भारत के स्वप्नदर्शी : पं0 दीनदयाल उपाध्याय

महेश कुमार सिंह[1]
[1]शोध–छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पं0 दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत कर उनके स्वप्न 'श्रेष्ठ भारत' को परिलक्षित करना है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय के चिन्तन में ऐसी मौलिकता एवं बोधगम्यता है जो भारतीय इतिहास, परम्परा, राजनीति और भारतीय अर्थनीति से प्रस्फुटित है तथा आधुनिक स्थितियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ दिशाओं का निर्देशन करती है। उपाध्याय जी की चिन्तन का प्रेरणा बिन्दु भारत का वह निर्धन अनिकेत एवं रूढ़ियों से असमर्थ अन्तिम व्यक्ति है जिसने काल और हर प्रकार के थपेड़ों के मध्य भारत के 'स्व' और स्वाभिमान को अपने निर्धन, दुर्बल, शोषित शरीर में जीवित रखा है। उपाध्याय जी की यह धारणा थी कि इस दरिद्रनारायण की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं मनोभावीय रिक्तताओं की पूर्ति कर उसको आधुनिक परिस्थितियों में 'नर से नारायण' के भावबोध से परिचित कराकर ही देश का कल्याण एवं गौरव निहित होगा। इसी विचार को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु उन्होंने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया और अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

KEY WORDS: *दीन दयाल उपाध्याय, राजनीति, एकात्म मानववाद*

भारत ने मानव को मात्र पदार्थ के रूप में कभी नही जाना। सम्पूर्ण मानव एक जीवन्त चेतना है। इसलिए प्राचीन भारतीय राजनीति का दायरा भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रहा। उत्कर्ष की मानवीय पराकाष्ठ से मुक्त रहते हुए, समूचे विश्व का कल्याण भारतीय चिन्तन–धारा का लक्ष्य रहा है। सहस्रों वर्ष पुरानी भारत की इसी शाश्वत परम्परा को आधुनिक राजनीति के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का महनीय काम पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने किया।[1] जिस तरह बालक सिद्धार्थ ने रास्ते चलते 'जरा' और 'मृत्यु' को देखा, जिससे यह आत्मबोध पैदा हुआ कि सारे भौतिक सुख और ऐश्वर्य सारहीन हैं। उसी तरह बालक दीनदयाल ने भी अपनों की ही मृत्यु को अत्यन्त निकट से देखते हुए 'आत्मबोध' के उस चरमबिन्दु का साक्षात्कार किया था जिनके लिए तत्वान्वेषी ऋषि आजीवन वनों और पर्वत–कन्दराओं में भटकते रहते है।(उपाध्याय,1998 पृ01)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय को उद्धृत करते हुए पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी ने कहा था कि "मैंने उपाध्याय जी के प्रथम दर्शन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के शीत शिविर में किये थे। वे देखने में सीधे तथा सरल थे किन्तु उनकी आंखों में एक आग की अनुभूति मुझे उस समय भी हुई थी।"(वही) पं0 दीनदयाल उपाध्याय सहजता व सरलता के प्रतिमूर्ति तथा अद्भूत चिन्तन शैली के लिए प्रख्यात थे। उनका सारा चिन्तन असाधारण था। वे देश में फिर से शांति, स्थिरता, समृद्धि और स्वाभिमान का युग प्रारम्भ करने की उच्च आकांक्षा से अभिसिंचित थे। पं0 दीनदयाल उपाध्याय यह मानते थे कि जीवन न तो एकाकी है, न एकांगी। उन्हें इसका सम्पूर्ण बोध था और इसलिए जीवन का सर्वांगीण विकास करने वाला समस्त वाङ्मय का सारस्वरूप एकात्म मानव दर्शन उनके अन्तःकरण से प्रस्फुटित हुआ।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के लिए पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी ने कहा था कि "राजनीति उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं। यह मार्ग था मंजिल नहीं। वे राजनीति का आध्यात्मीकरण चाहते थे। वे भारत के उज्ज्वल अतीत से प्रेरणा लेते थे तथा उज्ज्वलतर भविष्य का निर्माण करना चाहते थे। उनकी आस्थाएँ सदियों पुराने अक्षय राष्ट्र जीवन की जड़ो से रस ग्रहण करती थी किन्तु वे रूढ़िवादी नहीं थी। भविष्य के निर्माण के लिए वे भारत को समृद्धिशाली आधुनिक राष्ट्र बनाने की कल्पना लेकर चले थे। उपाध्याय जी का कार्य व्यक्तिनिष्ठ नहीं; तत्वनिष्ठ था। उन्होंने सदैव आदर्शों पर बल दिया और सिद्धांतों के लिए जीना सीखाया।''(सिंह,2015 पृ0185–187) पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक महामनीषी थे, जो सम्पूर्ण मानवता को सुखी, सम्पन्न बनाने के लिए अत्यन्त चिन्तातुर रहें युग पुरूषों की तरह ही वे अपने शरीर का कण–कण और जीवन का क्षण–क्षण राष्ट्र देवता के चरणों में समर्पित कर धरती पर समानता, समरसता, कर्मठता, ज्ञानवता, सर्वसम्पन्नता, सुख और शांति की सप्तजाह्नवी उतारने के लिए अविरल भगीरथ प्रयत्न करते रहे।(शर्मा,2001,पृ0474)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने श्रेष्ठ भारत के स्वप्न हेतु जिन अन्तर्निर्हित अभिधारणाओं के आधार पर विचार

1:Corresponding Author

दर्शन को विकसित किया, जिन प्रत्यनों के आधार पर अपने भव्य भारत का भव्य प्रासाद खड़ा किया, उन्हें बिन्दुवार निम्नवत् व्याख्यायित किया जा सकता हैः–

पं0 दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्रवादी विचार :

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने पश्चिम के राष्ट्रवाद की अवधारणा को विश्वशांति के प्रतिकूल बताया है। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में कहा कि भारत में राष्ट्रवाद का विचार कुछ सौ वर्षों का नहीं सहस्राब्दियों का है उसका आधार संघर्ष नहीं समन्वय है, परस्परानुकूलता है। भारतवर्ष में मानव कल्याण का एक व्यापक और उदार जीवन–दर्शन प्रकट हुआ। जीवन के इस समग्र चिंतन के कारण सामूहिक जीवन की एक ही अनुभूति अंतःकरणों में हुई जिसके आधार पर भारत का राष्ट्रीय जीवन विकसित हुआ। मानव जीवन के श्रेष्ठतम् गुणों की आराधना का भाव गूंज उठा। भारतीय मानस में यह उत्कंठित हो उठा कि सृष्टि की प्रत्येक हलचल में संघर्ष नहीं पूरकता है। एक ही तत्व विभिन्न रूपों में उपस्थित हुआ है। इसलिए जो इन विविध विभिन्नताओं में भी उस एक ही आत्मा का दर्शन करता है वही श्रेष्ठ है, आर्य है, मनुष्य कहलाने योग्य है। प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की इस भावना को लेकर ही भारत का राष्ट्रवाद प्रकट हुआ।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि भारत का इतिहास समस्त विश्व की मंगलकामना करने वाला है। विश्व के विभिन्न देशों में प्राप्त भारतीय इतिहास के साक्ष्य आज भी इस तथ्य की घोषणा कर रहे है कि भारत ने प्राणिमात्र के कल्याण हेतु ही प्रयत्न किये है। इसलिए उन्होंने यह आह्वान किया कि विश्व में परस्पर संघर्ष, विद्वेष, प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर प्रकट हो रही पश्चिमी राष्ट्रवाद की विभीषिका से विश्व को बचाना है तो उसके लिए भारत के सशक्त राष्ट्रवाद को ही संगठित एवं सक्षम बनाकर खड़ा करना होगा। यही विश्व कल्याण का मार्ग है।'(उपाध्याय,2014 पृ090.91)

भारतीय संस्कृति सम्बन्धी विचार :

मानवीय चेतना एवं कर्म का कोई भी आयाम संस्कृति के बाहर नहीं है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी संस्कृति को भारतीय अवधारणा का मौलिक शब्द मानते थे। उनका मानना था कि संस्कृति को समझने के लिए संस्कार को समझना परमावश्यक है। संस्कार वे अच्छाइयाँ हैं जो व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेश और वातावरण के प्रभाव से ग्रहण करता है तथा वे अच्छाइयाँ व्यक्ति के स्वभाव का अंग बन जाती है। व्यक्तियों की इन स्वभावजनित अच्छाइयों से उत्पन्न सामाजिक कृतियाँ ही संस्कृति कहलाती है। सामान्यतः 'प्राकृत' मानव को स्वाभाविक प्राणी बनाने की प्रक्रिया 'संस्कृति' ही है।(शर्मा, 2015 पृ0318.320)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने तन, मन, वचन, कर्म व व्यवहार में भी भारतीय संस्कृति का प्रबल पक्ष प्रस्तुत किया है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय के इस विचार को डा0 अर्जुनदास केसरी द्वारा उद्घृत एक लेख में कहा गया है कि, "संसार में एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचाना कर उनमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति और उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है। संस्कृति प्रकृति की अवहेलना नहीं करती, उसकी ओर दुर्लक्ष्य नहीं करती बल्कि प्रकृति में जो भाव सृष्टि की धारणा तथा उसको अधिक सुखकर और हितकर बनाने वाले है, उसको बढ़ावा देकर दूसरी प्रवृत्तियों की बाधा को रोकना ही संस्कृति है।"(केसरी,1991 पृ082)

वास्तव में संस्कृति शरीर में प्राण की भांति राष्ट्र जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुभव की जा सकती है। प्रकृति के तत्वों पर विजय पाने के प्रयत्न में तथा मानव की अनुभूति में मानव जिस काल्पनिक जीवन की रचना करता है, वह उसकी संस्कृति ही है। संस्कृति कभी भी गति शून्य नहीं होती। नदी के प्रवाह की भांति वह अविरल गतिमान रहती है। उस प्रवाह के साथ ही उसके कतिपय गुण–विशेषों का भी नूतन निर्माण है। जो उस सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उत्पन्न करने वाले समाज के संस्कारों तथा सांस्कृतिक भावना से अन्य राष्ट्र के साहित्य कला, दर्शन, स्मृति, शास्त्र, समाज रचना, इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न अंगो में अभिव्यक्त होती है। राष्ट्र भक्ति की भावना का निर्माण करने और उसको साकार स्वरूप देने का श्रेय राष्ट्र की संस्कृति को ही है।

संस्कृति राष्ट्र की सीमाओं को लांघकर मानव जाति के साथ उस राष्ट्र की एकात्मकता का नाता जोड़ती है। इसलिए सांस्कृतिक स्वतंत्रता परमावश्यक है।(उपाध्याय,2006 पृ03) पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का कहना था कि, "हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का ही विचार किया है किन्तु हम कोई पुरातत्ववेत्ता नहीं है, जो किसी पुरातत्व संग्रहालय के संरक्षक बन कर बैठ जाये। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं, अपितु उसे गति देकर सजीव तथा सक्षम बनाना है। हमें अनेक रूढ़ियों को छोड़कर सुधार करने होंगे। व्यवस्था का केन्द्र मानव होगा। भौतिक उपकरण तो उस मानव के सुख के साधन होंगे साध्य नहीं। मानव का परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता, सृष्टि और परमेष्टि से आत्मीय एकात्मकता होगी तभी वह इन सभी से सहअस्तित्व कायम रख सकेगा।"(पांचजन्य, 11 अक्टूबर 2015 पृ034)

वस्तुतः जब हम अपने यहाँ का इस परिप्रेक्ष्य में विचार करते है तो हमें राष्ट्रीय दृष्टि से ही सोचना पड़ेगा अर्थात हमें अपनी संस्कृति का ही विचार करना पड़ेगा। सम्पूर्ण जीवन एवं सम्पूर्ण सृष्टि का एकात्मवादी विचार प्रस्तुत करना पड़ेगा, क्योंकि हमारी संस्कृति "वसुधैव कुटुम्बकम्" की है। भारतीय संस्कृति

सम्पूर्ण विश्व में अपने परम्परागत ज्ञान वैभव के लिए अनुकरणीय मानी जाती है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह सम्पूर्ण जीवन का सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है। यह टुकड़ो–टुकड़ो में विचार नहीं करती। हमने जीवन में अनेकता अर्थात विविधता को स्वीकार करते हुए उसके मूल्य में निहित एकता को खोज निकालने का सदैव प्रयत्न किया है। जो पूर्णतः वैज्ञानिक है।(उपाध्याय,2012 पृ019)

भारत की आस्था को यदि पहचानना है तो उसे हमें सांस्कृतिक दृष्टि से ही देखना होगा। भारतीय संस्कृति जिस कारण से वैश्विक बनी है, जिसमें सांस्कृतिक और धार्मिक सहिष्णुता, उसकी कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन जीने की परम्परा और त्याग, तपस्या से तपी हुई आध्यात्मिक सम्पदा विशेष आकर्षक एवं स्पृहणीय है, जो जीवन को जीवन्त बनाने में सदा समर्थ है, उसे सम्यक् प्रकार से समझना होगा। भारतीय संस्कृति की दृष्टि एकात्मवादी है जो सम्पूर्ण सृष्टि को समन्वित किये हुए है। भारतीय संस्कृति की इस धारणा के कारण ही पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी की राष्ट्र कल्पना 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की कल्पना है। उनकी राजनीति भी संस्कृतिवादी है। उनका मानना था कि "संस्कृति की आधारशिला" पर ही हमारा आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक चिंतन जुड़ा हुआ है।"(पांचजन्य 24 अगस्त1984 पृ07) वे स्वयं को राजनीति में संस्कृति का राजदूत मानते थे।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति एकात्मवाद का ही पोषण करती है। सृष्टि में विद्यमान विभिन्न सत्ताओं का जीवन के विभिन्न अंगो में दृश्य भेद स्वीकार करते हुए उनके विविधता में एकता की खोज कर उनमें समन्वय की स्थापना करती है। वह परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर परस्पर अवलम्बन, पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर सृष्टि की क्रियात्मकता पर विचार करती है। जो एकांगी न होकर सर्वांगीण, सर्वात्मवादी एवं सर्वोत्कर्षवादी है।(उपाध्याय,2014 पृ074.75)

'चित्ति' सम्बन्धी विचार :

उपाध्याय जी यह मानते थे कि समाज केवल व्यक्तियों का समूह या समुच्चय नहीं, अपितु एक जीवमान सावयव सत्ता है। भूमि विशेष के प्रति मातृभाव रखकर चलने वाले समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात होते है, इसे चिति कहते है। राष्ट्रो का उदयावपात चिति के अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार पर निर्भर है।(वह पृ076) वस्तुतः चित्ति वह मानदण्ड है जिससे हर वस्तु को मान्य या अमान्य किया जाता है।(अग्निहोत्री और शुक्ल 2008 पृ043) 'चित्ति न तो सम्पूर्ण मानवता की होती है न राष्ट्र के अन्तर्गत आने वाले अन्य जनसमुदायों की। वह केवल 'राष्ट्रीय' होती है तथा ईश्वर द्वारा निर्धारित है, अतः अटल एवं अपरिवर्तनीय है।(शर्मा,2015 पृ0326)

अस्तु, राष्ट्र का स्वरूप 'एकजन' की सामूहिक मूल प्रकृति द्वारा निर्धारित होता है। यही 'चिति' है। काल और परिस्थिति के अनुसार वाहय ढ़ांचे में चाहे जो परिवर्तन होते रहें, किन्तु राष्ट्र की मूल प्रकृति नहीं बदलती। जिन सिद्धान्तों को चरितार्थ करने के लिए राष्ट्र का आविर्भाव हुआ है उनका पालन होते रहने तक 'चिति' विद्यमान रहती है। राष्ट्र चैतन्य बना रहता है।........ इस प्रकार राष्ट्र 'चिति' को जागृत रखता हुआ समर्थ, स्वावलम्बी, कार्यक्षम, विजयी और सर्वकाल नवोन्मेषकारी शक्ति से युक्त जीवित रहता है।(अग्निहोत्री और शुक्ल 2008 पृ045,49,50)

विराट् सम्बन्धी विचार :

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का विराट् के सम्बन्ध में मानना था कि, "जैसे राष्ट्र का आधार चिति होता है, वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है, उसे 'विराट' कहते है। 'विराट्' राष्ट्र की वह कर्म शक्ति है जो चिति से जाग्रत एवं संगठित होती है। विराट् का राष्ट्र जीवन में वही स्थान है जो शरीर में प्राण का है। प्राण से ही सभी इन्द्रियों को शक्ति मिलती है, बुद्धि को चैतन्य प्राप्त होता है और आत्मा शरीरस्थ रहता है। राष्ट्र में भी विराट् के सबल होने पर ही उसके भिन्न–भिन्न अवयव अर्थात् संस्थाएं सक्षम और समर्थ होती हैं। अन्यथा संस्थागत व्यवस्था केवल दिखावा मात्र रह जाती है। 'विराट' के आधार पर ही प्रजातंत्र सफल होता है और राज्य बलशाली बनता है। इसी अवस्था से राष्ट्र की विविधता उसकी एकता के लिए बाधक नही होती। भाषा, व्यवसाय आदि भेद तो सभी जगह होते है, किन्तु जहाँ 'विराट्' जाग्रत रहता है वहाँ संघर्ष नहीं होते है। सब लोग शरीर के भिन्न–भिन्न अवयवों की भांति या कुटुम्ब के घटकों के समान परस्पर पूरकता से काम करते रहते है। अतः इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने यह आह्वान किया है कि हम 'विराट्' जाग्रत करें। क्योंकि हमें अपने राष्ट्र के 'विराट्' को जाग्रत करने का काम करना है। अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान पर यथार्थवादी आकलन कर और भविष्य के प्रति महत्वाकांक्षा लेकर हम इस कार्य में जुट जाएं। हम भारत को न तो किसी पुराने समय की प्रतिच्छाया बनाना चाहते है और न रूस या अमेरिका की अनुकृति।"(उपाध्याय,2012 पृ067)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी राष्ट्र की प्राण शक्ति को ही 'विराट' के रूप में अभिव्यक्त किया है। राष्ट्र को सचेतन रखने वाली यह शक्ति समस्त शरीर में संचरित होती है। इसकी सचेतनता ही राष्ट्र जीवन का सर्वांगीण विकास करवाती है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी यह मानते है कि जिस तरह शरीरस्थ 'प्राण' प्राणायाम से सबल बनता है उसी तरह राष्ट्र का 'विराट' लोक संग्रह, लोक संस्कृति व लोकचेतना के माध्यम से ही सबल

बनता है। लोकतंत्र की सफलता भी जागरूक व सबल विराट पर ही निर्भर करती है। भारत राष्ट्र के नूतन जीवन के नव–निर्माण की पावन, पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क व प्रभाव के कारण विरत नई पीढ़ी को अपनी प्राचीन सुसंगत, समृद्ध संस्कृति की अवधारणा से चिरपरिचित कराते हुए सुसम्बद्ध करना होगा। राष्ट्र की 'चिति' व 'विराट' की अवधारणा उनके इसी प्रयत्न का परिचायक है।(शर्मा 2015 पृ0326)

राष्ट्र सम्बन्धी विचार :

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का राष्ट्र सम्बन्धी विचार भारत के राष्ट्र स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में सुस्पष्ट एवं बोधगम्य है। भूमि, जन तथा संस्कृति के संघात से राष्ट्र बनता है 'संस्कृति' राष्ट्र की शरीर, 'चिति' उसकी आत्मा तथा 'विराट' उसका प्राण है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।''(अग्रवाल,1949 पृ091)दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि, "भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा मौलिक है जबकि पश्चिमी राष्ट्रवाद प्रतिक्रिया की उपज है। भारत के मौलिक व प्राकृतिक राष्ट्रवाद को वे 'हिन्दू राष्ट्रवाद' कहते है। वे क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की कल्पना का निषेध करते हुए 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का समर्थन करते है। वे 'राष्ट्र' की अवधारणा को 18वीं या 19वीं शताब्दी की उपज नहीं मानते। उनकी मान्यता है कि यूरोप के बारे में चाहे यह बात सही हो लेकिन भारत एक अनादि एवं प्राचीन राष्ट्र है। वे भारतीय इतिहास को अविच्छिन्न राष्ट्रीय परम्परा का प्रवाह मानते है।"(शर्मा 2015 पृ0326.328) राष्ट्र को एक सार्वभौम जीवमान सत्ता माना है। राष्ट्र की हस्ती अमिट है, "राष्ट्र मानव जीवन की स्वाभाविक इकाई है। दुनिया में राष्ट्रवाद की सत्ता प्रभावी रही है। दुनिया में सभी बड़े तत्वज्ञानों का उपयोग सब राष्ट्र अपने–अपने हित के लिए ही करते है।"

भारत के एकता और अखण्डता को उद्घृत करते हुए पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने लिखा है कि "भारत की अखण्डता और एकता को स्थूल रूप देने के लिए एक के बाद एक .... सम्राटों ने भारत की एक सूत्रता को बनाए रखने का पूरा प्रयास किया। इतना ही नहीं भारत के एक जीवन को मानो संसार के सामने प्रकट करने के लिए .... सुख और दुःख में, जय पराजय में और वैभव पराभव में, जो एकता और अभिन्नता प्रकट की गई उसने हमारे राष्ट्र को एक जीवन के सूत्र में संगठित कर दिया।"(उपाध्याय,2014 पृ063.64) वे मानते थे कि जिस प्रकार "राष्ट्र के लिए राज्य है, राज्य के लिए राष्ट्र नही। उसी प्रकार राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नही, अपितु राष्ट्रीयता के पोषण हेतु राजनीति होनी चाहिए।"(देवधर 2014 पृ072) इस हेतु सामान्य जन में राजनीतिक चेतना को जगृत एवं संरक्षण करना इस युग की सबसे बड़ी देन है। वस्तुतः युग परिवर्तन सहज न होकर संघर्षपूर्ण हो गया है। हमें सभी विद्यमान समस्याओं का विश्लेषण इस पृष्ठिभूमि में करते हुए देश, काल और परिस्थिति के अनुसार ही अपनी नीति का निर्धारण करनी चाहिए।

उपाध्याय जी का मानना है कि "प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र का यह स्वाभाविक कर्त्तव्य है कि वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर उसे सदृढ़ एवं स्थायी बनाने का प्रयत्न करे तथा अपने नागरिकों को एक ऐसा शासन प्रदान करे जिसके अन्तर्गत वे अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए समृद्ध, सोद्धेश्य एवं सुखी समाज के संगठन में सचेष्ट रह सकें। भारत की स्वतंत्रता के उपरान्त जनमन में यह सहज आकांक्षा जाग्रत हुई थी और यह अपेक्षा की गयी थी कि सदियों से परतंत्र अतः संघर्षरत राष्ट्र अब अपने घर का नूतन निर्माण कर सकेगा, रूढ़ियाँ समाप्त होकर स्वस्थ चैतन्यमयी संस्थाएं जन्म लेंगी तथा आर्थिक दुर्व्यवस्था एवं सामाजिक अन्याय के पाटों में पिसने वाला जन जीवन सम्पन्नता और समानता के वातावरण में सन्तोष की सांस ले सकेगा।"(वही पृ072)

वे स्वतंत्रता का स्तवन करते समय वीर सावरकर के इन्हीं विचारों को उद्घृत किया कि, "जो भी उन्नत, उदात्त, उत्तम तथा महन्मधुर है, सब तुममें ही समाया है।"(वही,पृ0188)वे राष्ट्रनीति में भी अनेक 'स्व' का समावेश करते थे– स्वतत्रंता, स्वराज्य, स्वभाषा, स्वावलम्बन, स्वदेशी, स्वत्व आदि। वे हर समस्या को राम भक्त हनुमान की भांति राष्ट्रहित के एक मात्र निकष पर परख लिया करते थे।(उपाध्याय,2014 पृ075.76)

आज भारतीय जीवन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। अपने राष्ट्र के स्वतंत्रता हेतु, पुनर्निर्माण हेतु, सद्गुणी जीवन, निर्दोष जीवन, स्वार्थ रहित तथा त्याग तपस्या से भरा हुआ जीवन आवश्यक है।

'एकात्म मानववाद' सम्बन्धी विचार :

वास्तव में 'एकात्म मानववाद' एक ऐतिहासिक विचार श्रृंखला की कड़ी के रूप में उत्पन्न हुआ, जिसकी नूतन कड़ी पं0 दीनदयाल उपाध्याय प्रणीत 'एकात्म मानववाद' है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि स्वतंत्र्योत्तर भारत में विचार मंथन की प्रक्रिया को भारतीय राजनीतिक दर्शन की संकलित प्रयत्न की दिशा में चिंतन को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। भारत का अपना एक वैशिष्ट्य है कि वह विभिन्न मानवीय एवं सांस्कृतिक धाराओं को अपने में समाहित कर लेता है। जिसमें राजाराम मोहन राय से लेकर पं0 दीनदयाल उपाध्याय तक का पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन दर्शन, व्यवहार व तत्वज्ञान का संघर्षपूर्ण काल खण्ड वैचारिक वैशिष्ट्य नव रसायन 'एकात्म मानववाद' भारतीय प्रखर मनीषा का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत को भारत बनाए रखना चाहती है पर दुनिया से कट कर नहीं, जो भारत को आधुनिक बनाना चाहती है पर पश्चिम की प्रतिकृति नहीं, जो जागतिक ज्ञान–विज्ञान का उत्कर्ष चाहती है पर अध्यात्म को छोड़कर नही, जो ससार के नूतन प्रयोगों में योगदान करना चाहती है पर

स्वयं को भूल कर नहीं।(शर्मा, 2015 पृ0357) वास्तव में पाश्चात्य प्रयोगों में लौकिक जीवन की वैशिष्ट्यता के भारतीयकरण की प्रक्रिया की फलश्रुति ही पं0 दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' है।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने बम्बई के अपने ऐतिहासिक भाषण में भी एकात्म मानववाद की भावपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा था कि ''विश्व का ज्ञान और आज तक की सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वों के भारत से भी गौरवशाली होगा। जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ, सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। यह हमारी संस्कृति का शाश्वत, दैवी तथा प्रवहमान रूप है। चौराहे पर खड़े विश्व–मानव के लिए यही हमारा दिग्दर्शन है। भगवान हमें शक्ति दे कि हम इस कार्य में सफल हो, यही प्रार्थना है।"(उपाध्याय,2014 पृ075.76)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि व्यष्टि एवं समष्टि में विरोध मानना भूल है। मूलतः सत्य तो यह है कि व्यष्टि एवं समष्टि अभिन्न एवं अविभाज्य है। व्यष्टि का समष्टि के प्रति समपर्ण अत्यन्त आवश्यक है। परस्पर समर्पण के परिणामों से ही यह विकसित समष्टि की चेतना है जिसके हितों में विरोध नहीं वरन् पूरकता होती है, समन्वय रहता है। व्यष्टि बिन्दु का विकास ही मानवता तक के सर्पिल या मण्डलाकार जीवन प्रक्रिया से हुआ है।(शर्मा,2015 पृ0373)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति को 'शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय' मानते है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके अभाव में व्यक्ति की सुखानुभूति एवं व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है। व्यक्ति की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। जिसकी पूर्ति आजीविका के साधन, शांति, ज्ञान एवं तादात्म्य–भाव से ही सम्भव है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की प्रबल इच्छा ही उसे समाज के हित में कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है।(उपाध्याय, 2014 पृ075.76)

'एकात्म मानववाद' तात्विक सार को पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने बताया है कि, ''हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए। जो 'यत पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन है, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में, भिन्न रूचि लोक का विचार केवल एक औसत मानव शरीर, मन, बुद्धि व आत्मायुक्त अनेक ऐषणाओं से प्रेरित पुरूषार्थ चातुष्ट्यशील, पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाए, वह अधूरी है। हमारा आधार 'एकात्म मानव' है जो एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। 'एकात्म मानववाद' के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।"(भारतीय जनसंघ, घोषणायें एवम् प्रस्ताव,पृ012)

आर्थिक विचार :

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने अर्थनीति की विवेचना करते हुए कहा है कि, "अर्थ (सम्पत्ति) के अभाव व प्रभाव दोनों से समान जीवन को मुक्त रखकर सामाजिक अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति के बारे में एक योग्य व्यवस्था निर्मित करने को भारतीय संस्कृति में अर्थायाम कहा गया है।"(उपाध्याय,2014 पृ014) वे मानते थे कि जिस प्रकार 'प्राणायाम' मनुष्य के स्वास्थ्य हेतु हितकारी है, उसी प्रकार 'अर्थायाम' देश की अर्थव्यवस्था हेतु आवश्यक है।"(पांचजन्य,12 दिसं0 2015 पृ011) अतएवं हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारत की आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नहीं है। .... कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति सम्भव है।''

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ग्रामीण विकास से ही भारत के विकास को सम्भव मानते हुए कहते हैं कि, "आर्थिक योजनाओं तथा प्रगति का माप समाज के ऊपर की सीढ़ी पर पहुँचे व्यक्ति से नही, बल्कि सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान व्यक्ति से होगा। आज देश में ऐसे करोड़ो मानव है, जो मानव के किसी भी अधिकार का उपभोग नहीं कर पाते। शासन के नियम और व्यवस्थाएँ, योजनाएँ और नीतियाँ, प्रशासन का व्यवहार और भावना, इनको अपनी परिधि में लेकर नही चलती और प्रत्युत् उन्हें मार्ग का रोड़ा ही समझा जाता है। हमारी भावना और सिद्धान्त है कि वह मैले–कुचैले, अनपढ़, मूर्ख लोग हमारे नारायण है। हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानव धर्म है। जिस दिन इनको पक्के, सुन्दर, स्वच्छ घर बनाकर देंगे, जिस दिन हम इनके हाथ और पाँव की विवाइयों को भरेंगे और जिस दिन इनको उद्योगों .... धंधों की शिक्षा देकर इनकी आय को ऊँचा उठा देंगे, उस दिन हमारा भ्रातृभाव व्यक्त होगा। ग्रामों में जहाँ समय अचल खड़ा है, जहाँ माता और पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ है, वहाँ जब तक हम आशा और पुरूषार्थ का संदेश नहीं पहुँचा पायेंगे, तब तक हम राष्ट्र के चैतन्य को जागृत नहीं कर सकेंगे। हमारी श्रद्धा का केन्द्र आराध्य और उपास्य, हमारे पराक्रम और प्रयत्न का उपकरण तथा उपलब्धियों का मानदण्ड वह मानव होगा जो आज शब्दशः अनिकेत और अपरिग्रही है। अस्तु पं0 दीनदयाल उपाध्याय का चिन्तन समग्रतावादी है उनका अर्थ चिन्तन मानव प्रधान एवं समाजपरक हैं, साथ ही उनका सांस्कृतिक अर्थशास्त्र आत्मरंजक भी है और बुद्धिगम्य भी।

मानवतावदी विचार

मानवता वह विश्वास है जो किसी कार्य की सफलता का अनुमान उसके द्वारा मानवीय कष्टों एवं पीड़ाओं को कम करने में प्राप्त सफलता के आधार पर करता है। महर्षि वेदव्यास

का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि "परोपकार" ही धर्म है और 'पर पीड़ा' पाप है, मानवतावाद का सारतत्व है।"(पाठक,2009 पृ096) डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन जी का कहना है कि, "मानवतावाद यह मानकर भी चलता है कि मनुष्य प्रकृत्यः अच्छा होता है। जो बुराईयाँ है, वे समाज की है, उन परिस्थितियों में निहित है जिनसे मानव घिरा है। यदि वे दूर कर दी जाय तो मानव की अच्छाई बाहर आ जायेगी और प्रगति सहजलभ्य होगी।"(राधकृष्णन,पृ035)

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि आज विश्व के समस्त झंझावातों से हमें सुरक्षा प्रदान करने वाला कोई नया वाद नहीं है, आप इसे किसी भी नाम से पुकारिये हिन्दुत्ववाद, मानवतावाद या कोई नया वाद किन्तु यही एकमेव मार्ग भारत की आत्मानुरूप होगा जो जनता में नवीन उत्साह संचारित कर सकेगा।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के 'एकात्म मानव दर्शन' को आधारभूत मानकर धर्मराज्य, जनतंत्र, सामाजिक समानता व समरसता, आर्थिक विकेन्द्रीकरण इत्यादि को अपना लक्ष्य बनाना होगा। इन सब का समन्वित निष्कर्ष ही हमें एक ऐसा जीवन दर्शन उपलब्ध करा सकेगा, जो समस्त झंझावातों में हमें सुरक्षा प्रदान करते हुए सपनों के भारत के निर्माण में सहयोगी बन सकेगा। यही एकमेव मार्ग भारत की आत्मानुरुप होगा और मानवता में नवीन उत्साह संचालित कर सकेगा। समत्व ही विभ्रांति के चौराहे पर खड़े न सिर्फ भारत का अपितु सम्पूर्ण विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक अवस्थाओं हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता हुआ सम्पूर्ण मानवता का हित व कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेगा।

सन्दर्भ

उपाध्याय, दीन दयाल (2014) : *एकात्म मानव दर्शनः* नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन

भारतीय जन संघः घोषणाएं एवं प्रस्ताव, भाग–1, 'सिद्धांत और नीति' पृ0–12

देवधर, विश्वनाथ नारायण (2014) *दीन दायल उपाध्यायः विचार दर्शन, खण्ड–7* व्यक्ति दर्शन, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन

कुलकर्णी, शरत अनन्त (2014): *पं0 दीनदयाल उपाध्यायः विचार दर्शन,* खण्ड–4, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन,

पं0 दीनदयाल उपाध्याय, *सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग* उ0प्र0 दीपक प्रिंटिग सेण्टर, नया गांव पूर्व, लखनऊ, सितम्बर 1998,

पाञ्चजन्यः 11 अक्टूबर 2015, पृ0–34

पाञ्चजन्य, 12 दिसम्बर, 1995, पृ0–11

शुक्ल,रघोत्तोम(2014) *युगद्रष्टा– पं0 दीनदयाल उपाध्याय* ,लखनऊ,

अग्निहोत्री रमाशंकर और भानुप्रताप शुक्ला संपा0 (2008): *राष्ट्रजीवन की दिशाः दीनदयाल उपाध्याय,* लखनऊ, लोकहित प्रकाशन,

उपाध्याय, दीन दयाल (2014) *राजनीति राष्ट्र के लिए* विचार दर्शन, खण्ड–6, नई दिल्ली, सुरूचि प्रकाशन,

सिंह, अमरजीत संपा0(2015) *मै दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हू* नई दिल्ली, प्रतिभा प्रतिष्ठान

स्मारिका, *'समग्र दृष्टि':* प्रकाशक पं0 दीनदयाल उपाध्याय जन्मभूमि स्मारक समिति, नगला चन्द्रभान, 8 जनवरी, 1991, पौष सप्तमी, वि0सं0 2048,

शर्मा, डा0 योगेश कुमार(2001) *भारतीय राजनीतिक विचारक, भाग–2* नई दिल्ली, कनिष्का पब्लिशर्स डिस्ट्रव्यूटर्स

शर्मा, डा0 महेश चन्द्र (2015) *पं0 दीनदयाल उपाध्याय : कर्तृत्व एवं विचार,* नई दिल्ली, प्रभात पेपर बैक्स,

राधाकृष्णन,डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन, *एन आइडियलिस्टिक व्यू ऑफ लाइफ,*

पाठक,डॉ0 विनोद चन्द (2009) *पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन,* नई दिल्ली, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली,

अग्रवाल,डॉ0 वासुदेव शरण (1949) *पृथिवी पुत्र, राष्ट्र का स्वरूप,* नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल,

केसरी,डॉ0 अर्जुन दास, भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षबर : पं0 दीनदयाल उपाध्याय, *उत्तर प्रदेश संदेश;* प्रकाशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0 सितम्बर, 1991

उपाध्याय,दीनदयाल(1958) *भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशा* लखनऊ, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन

उपाध्याय,दीनदयाल (2014) *राष्ट्र चिंतन,* लखनऊ, लोकहित प्रकाशन